श्रमणी तीर्थ का जैन धर्म की प्रभावना में अवदान

• (श्री कुसुमवती जी म. की सुशिष्या डॉ. साध्वी दिव्यप्रभा)

मानव इस विराट् विश्व का एक चिन्तनशील एवं मननशील प्राणी है। इसकी महिमा और गरिमा वस्तुतः वर्णातीत एवं वर्णनातीत है। मानव और पशु जगत् में बहुविध समानताएं परिलक्षित होती है दोनों प्राणी हैं, इसलिए जीवन निर्वाह हेतु आहार अपेक्षित है। दोनों भय ग्रस्त है निद्रादेवी की आराधना में भी सर्वात्मना समर्पित है। अनेक प्रकार की सदृशता होते हुए भी एक ऐसी विलक्षण विशेषता है जिसके आधार पर यह स्पष्टतः प्रगट है कि पशुजगत् से मानव सर्वश्रेष्ठ है और सर्वज्येष्ठ है। वह विशिष्ट विशेषता यही है कि मानव अपने जीवन में धर्माचरण कर सकता है।

धर्म अपने आप में मंगलस्वरूप है और वह प्राणिमात्र के योगक्षेम का आधार है एवं वह कल्याणप्रद है। धर्म वस्तुवृत्या त्रिकालाबाधित सत्य है। अखण्ड एवं शाश्वत सत्य है। उक्त कथन को कथमपि नकारा नहीं जा सकता। इतना ही नहीं धर्म को देश काल क्षेत्र और सम्प्रदाय की संकुचित परिधियों में निबद्ध नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत, शब्द इतना व्यापक और इतना विराट् है कि धर्म शब्द के उच्चारण मात्र से ही व्यक्ति उसका न केवल अर्थअपितु अभिप्राय भी हृदयंगम कर लेता है और आत्मसात् भी कर लेता है।

धर्म आदि नहीं अनादि है। जैनधर्म के अभिमतानुसार इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हैं। उन्होंने जैन धर्म का प्रवर्तन किया है। अतः कालचक्र के आधार पर भगवान् ऋषभ देव को धर्म का आदिकर्ता कहा है औरं अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर है। प्रत्येक तीर्थंकर चार तीर्थों की संस्थापना करता है। इसी लिए वे तीर्थंकर कंहलाते हैं। तीर्थ की संख्या शाश्वत है वे चार हैं। जो इस प्रकार है -श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका [१]

उक्त चार भेदों में प्रथम के दो भेद अणगार धर्म के प्रतीक है और अन्तिम के दो भेद आगार धर्म के परिचायक है। इस प्रकार धर्म के दो भेद हैं [२] एक आगार धर्म और दूसरा अणगार धर्म।

प्रस्तुत निबन्ध की सीमित पृष्ठ संख्या को ध्यान में रखते हुए यहाँ पर श्रमणी धर्म के सन्दर्भ में आलेखन करना हमारा प्रतिपाद्य विषय है।

श्रमणी नारी जाति का सर्वाधिक परम विशुद्ध स्वरूप है। इसी स्वरूप में स्थित नारी अध्यात्मिक जगत में समुत्कर्ष करती है परमपद मोक्ष को प्राप्त कर लेती है। श्रमणी बहिर्जगत् से हट कर अन्तर्जगत् में विचरण करती है। वह तन की दृष्टि से यहाँ पर है पर मन की दृष्टि से वह मोक्ष में है। वह अपने जीवन में संयम धर्म की अखण्ड रूप से आराधना करती है। समता धर्म को आत्मसात कर लेती है राग और

१ - भगवती सूत्र २०/८

२ - स्थानांग सूत्र स्था. २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वेष रूप प्रगाढ़ ग्रन्थियों का उन्मूलन करती है और वह चेतनाशील मन से विध्न बाधाओं पर विजयश्री प्राप्त करती है। चरम लक्ष्यं की ओर अग्रसर होती है। वह अपने आप में ज्योति स्वरूपा है। वह ज्योति इस अर्थ में है कि वह स्वयं प्रकाशमान होती है। अन्य भव्यात्माओं को भी आलोकित कर देती है। जिससे वे भव्य आत्माएं कुमार्ग से पराङ्मुख होकर सन्मार्ग की ओर प्रस्थित होती है।

श्रमणी न केवल ज्योति है अपितु वह अग्नि शिखा भी है यह अग्निशिखा इस रूप में है कि अपने जन्म जन्मान्तरों के कर्मकाष्ठ को जला देती है और उसके पावन सम्पर्क में समागत भव्य आत्माएं भी अपने चिरसंचित कर्मघास को भस्मसात् कर देती है।

इसी अवसर्पिणी काल चक्र के प्रथम तीर्थकर भगवान्, ऋषभदेव की माता ने द्रव्य की दृष्टि से संयम मार्ग अंगीकृत नहीं किया है पर भाव की अपेक्षा से संयम की और चारित्र की पूर्णता के कारण ही उन्हें मुक्ति मिल गयी थी। माता मरुदेवी के बाद भगवान् ऋषभदेव की दो समादरणीया पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी का सविस्तृत विवरण जैन साहित्य में उपलब्ध है। सांसारिक अवस्था में उनकी उपलब्धियों की चर्चा करना यहाँ प्रासंगिक नहीं होगा। किन्तु इतना उल्लेख करना नितान्त अपेक्षित होगा कि उन दोनों वैराग्यमूर्ति अखण्ड बाल ब्रह्मचारिणी पवित्र हृदया बहिनों ने संयम मार्ग अंगीकार कर स्वयं का कल्याण किया और साथ ही इन दोनों बहिन साध्वियों ने अपने भ्राता सरलमना तप की अखण्डमूर्ति बाहुबलि को भी वास्तविकता का परिबोध देकर लाभान्वित किया। उनके जीवन का एक संस्मरण स्मृति के आकाश में नक्षत्र की भांति चमक उठा है।

बाहुबलि ने दीक्षा अंगीकार की उसके पश्चात् अतिघोर तपश्चरण में संलग्न हुए। उनकी यह तपस्या पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। तथापि वे केवलज्ञान की शाश्वत ज्योति से उद्भासित नहीं हुए। इसका एक मात्र कारण यह था उनके अन्तर्मन में इस बात को लेकर ज्वार के समान कुछ ऐसा ही दृश्य उठ रहा था कि संयम साधना में ज्येष्ठ अपने लघुभ्राताओं को वंदन नमन कैसे करें। ज्येष्ठ होकर अनुजों को वन्दन? नहीं। यह असम्भव है। उनके मन में यही अहंकार व्याप्त था जो वास्तव में मिथ्यापूर्ण था। ब्राह्मी और सुन्दरी इन दोनों ने उनके निकट आकर उद्बोधन के स्वर में कहा -हे भाई! गज से उतरो। जब तक आप गज पर आरूढ़ रहेंगे तब तक आपको केवल ज्ञान की अखण्ड अनन्त दिव्य ज्योति प्राप्त नहीं हो पाएगी। बहिनों के ये शब्द बाहुबलि के कर्णकुहरों में ज्योंहि पड़े त्योंहि वे चिन्तन के गहरे सागर में डूब गये। गज-यहाँ वन में गज कहा है और इसी अनुक्रम में उनके चिन्तन में सहज रूप में मोड़ लिया। मैं कब से मानरूपी गज पर आरूढ़ हुआ हूँ। मेरा यह मान कितना मिथ्या है। वे मेरे अनुज हैं तो क्या हुआ संयम में मुझ से ज्येष्ठ हैं। ज्येष्ठ होने के नाते मुझे उनकी वन्दना करनी चाहिये। बस यह विचार आते ही बाहुबलि भाइयों के सन्निकट वन्दनार्थ जाने के हेतु अपना कदम बढ़ाते हैं कि उन्हें केवल ज्ञान की अनंत अक्षय ज्योति उपलब्ध हो जाती है। यदि ब्राह्मी और सुन्दरी उन्हें सचेत नहीं करती संक्षिप्त पर सार पूर्ण उद्बोधन नहीं देती उनके मिथ्याभ्रम की ओर ध्यान केन्द्रित नहीं कराती तो क्या उन्हें केवलज्ञान हो पाता? उक्त कथनानक के तात्पर्य से यह सुस्पष्ट है कि इन दोनों बहनों के निमित्त से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ क्योंकि उपादान के लिए निमित्त का होना न केवल आवश्यक अपितु अनिवार्य है। निमित्त अपने स्थान पर महत्त्व रखता है और उपादान का भी अपना महत्त्व है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणी वस्तुतः अपने अन्तर ज्योति के प्रकाश में इतनी दिव्य है कि उसका यथा तथ्य वर्णन करना सम्भव प्रतीत नहीं होता। वह मानव चेतना के विकास के लिए महान् उदात्त शाश्वत संदेश प्रदान करती है। वास्तव में वह पूज्या है। आदरणीया है। नमस्करणीया है। प्राचीन इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर ऐसे असंख्य उदाहरण है जिनका विस्तार से वर्णन करना शक्ति और मति परे है। आर्या शिरोमणि चन्दना, मृगावती, अञ्जना राजीमती सुलसा आदि अनेक श्रमणियाँ अध्यात्म की सर्वोच्च भूमिका पर पहुँच गयी और वे आत्मा से परमात्मा के रूप में हो गयी।

श्रमणी का उतना ही स्थान है जितना स्थान श्रमण का है। क्योंकि श्रमण की भांति श्रमणी भी एक तीर्थ स्वरूपा है। दोनों के नियम उपनियम भी समानता लिए हुए हैं। जैसे श्रमण पंच महाव्रत का आराधक है श्रमणी भी पंचमहाव्रत की आराधिका होती है। श्रमण बावीस परिषहों पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करता है और श्रमणी भी बावीस परिषह को जीतने में अपना पराक्रम दिखाती है। पाँच समिति और तीन गुप्ति की परिपालना श्रमण और श्रमणी दोनों करते हैं। श्रमण की भांति श्रमणी भी प्रातः सायं षडावश्यक की साधना में संलग्न रहती है। दशविधयति धर्म श्रमण और श्रमणी दोनों के आचरणीय है।

श्रमण संघ में जिस तरह श्रमणों की व्यवस्था निर्धारित है, उसी तरह श्रमणियों की भी व्यवस्था रही है। श्रमणी संघ की समुत्कर्ष का हेतु और सुव्यवस्ता बनाये रखने के लिए कतिपय पदों का उल्लेख है। वे पद इस प्रकार हैं - (१) प्रवर्तिनी (२) गणावच्छेदिनी (३) अभिषेका और (४) प्रतिहारी।

इन पदों के बारे में सविस्तृत विवेचना न करती हुई संक्षेप में ही इन पदों का स्पष्टीकरण और स्वरूप प्रस्तुत कर रही हूँ।

(१) प्रवर्तिनी [३] - श्रमणी संघ में प्रवर्तिनी का जो स्थान है वह वस्तुतः महत्वपूर्ण है। उसकी अपनी गरिमा और महिमा है। श्रमणी की दीक्षा पर्याय कम से कम आठ वर्ष की होनी चाहिये। वह आचार में कुशल, प्रवचन में प्रवीण, संक्लिष्ट चित्त वाली स्थानांग और समवायांग आदि आगमों की ज्ञाता होना आवश्यक है। प्रवर्तिनी पद के लिए प्रधान आर्या गणिनी महत्तरा आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जो उसके निर्मल एवं तेजस्वी व्यक्तित्व को उजागर कर देते हैं। आठ वर्ष की दीक्षा पर्याय वाली प्रवर्तिनी के लिए यह भी बताया है कि वह एक साध्वी के साथ शीत और उष्ण काल में विचरण नहीं कर सकती। कम से कम दो साध्वियाँ आवश्यक हैं।

(२) गणावच्छेदिनी - जो स्थान श्रमण श्रमणी में गणावच्छेद का रहा है वही स्थान श्रमणीसंघ में गणावच्छेदिनी का रहा है गणावच्छेदिनी पद धारिणी श्रमणी को शीत एवं उष्ण काल में तीन अन्य साध्वियों के साथ विचरण करना चाहिए वर्षावास में उसके साथ चार साध्वियाँ आवश्यक है।

(३) अभिषेका - श्रमण संघ में जो स्थान स्थविर का है वही स्थान श्रमणी संघ में अभिषेका का रहा है, कही-कही पर अभिषेका के स्थान पर गणिनी के समकक्ष रखा गया है।

(४) प्रतिहारी - निग्रन्थी प्रतिहारी द्वारपालिका के रूप में मानी गई है। वह प्राथमिक की तरह होती है, जहाँ कहीं ऐसे स्थलों पर रुकना पड़ता है। जहाँ साध्वी की सुरक्षा का प्रश्न होता है वहाँ वह प्रतिहारी द्वारपालिका के रूप में रहकर अन्य श्रमणियों की रक्षा करती थी।

---

३ - व्यवहार सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार श्रमणी संघ की सवर्तोमुखी समुत्कर्षता एवं सुव्यवस्था हेतु उपर्युक्त पदों का निर्धारण किया गया है।

भगवान श्रषभदेव के शासन काल में चालीस हजार श्रमणियाँ सिद्ध हुई (४) तीर्थंकर अजितनाथ के शासनकाल में श्रमणियों की संख्या तीन लाख तीस हजार थी (५) भगवान संभवनाथ के शासन काल में साध्वियों की उत्कृष्ट सम्पदा तीन लाख छत्तीस हजार थी (६) भगवान अभिनन्दन के शासन काल में श्रमणियों की संख्या छः लाख तीस हजार थी (७) तीर्थंकर सुमतिनाथ के युग में पाँच लाख तीस हजार साध्वियाँ थी (८) भगवान पद्मप्रभ के धर्मपरिवार में चार लाख बीस हजार साध्वियों की संख्या थी (९) तीर्थंकरसुपाश्र्वनाथ के शासन काल में सतियों की संख्या उत्कृष्ट सम्पन्न चार लाख तीस हजार थी (१०) तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के शासन काल में आर्याओं की संख्या तीन लाख अस्सी हजार थी (११) तीर्थंकर सुविधिनाथ के धर्म परिवार में श्रमणियों की उत्कृष्ट सम्पदा एक लाख बीस हजार थी (१२) तीर्थंकर शीतलनाथ के धर्म संघ में महासतियों की संख्या एक लाख छः थी (१३) भगवान श्रेंयास नाथ के शासन काल में निग्रन्थियों की उत्कृष्ट सम्पदा एक लाख तीन हजार थी (१४) तीर्थंकर वासुपूज्य के धर्म संघ में साध्वी-रत्न की संख्या एक लाख रही थी। (१५) तीर्थंकर विमलनाथ के चतुर्विधसंघ श्रमणियों की उत्कृष्ट संख्या एक लाख आठ सौ थी (१६) भगवान अनन्तनाथ के धर्मपरिवार में साध्वियों की संख्या बासठ हजार थी (१७) भगवान धर्मनाथ के श्री संघ में साध्वियों की संख्या बासठ हजार चार सौ थी (१८) भगवान शान्तिनाथ के शासन काल में साध्वियों की उत्कृष्ट संख्या इकसठ हजार छः सौ थी (१९) भगवान कुन्थुनाथ के धर्मपरिवार में साध्वियों की संख्या साठ हजार छः सौ थी (२०) भगवान अरहनाथ के शासनकाल में साध्वियों की उत्कुस्ट संख्या साठ हजार थी। (२१) भगवान मल्लिनाथ के शासन काल में श्रमणियों की संख्या पचपन हजार थी (२२) भगवान मुनिसुव्रत के शासन काल में श्रमणियों की संख्या पचास हजार थी (२३) भगवान नेमिनाथ के शासन काल में साध्वियों की संख्या इकतालीस हजार थी

---

४ - कल्पसुत्र सूत्र १, २, ७

५ - प्रवचन सारोद्वार १, १७ गाथा ३३, ५/३९

६ - प्रवचन सारोद्वार १७ गाथा ३३५ -३९

७ - सत[illegible]११३ गाथा २३५ - २३६

८ - सतरियढार ११३ गाथा २३५ - २३६

९ - समवायाङ्ग सूत्र

१०	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
११	सतरियढार	११३गाथा	२३५ - २३६
१२	प्रवचनसारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१३	प्रवचनसारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१४	प्रवचनसारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१५	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१६	सतरियढार	११३ गाथा	२३५ - २३६
१७	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१८	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१९	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
२०	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
२१	सतरियढार	१०४ गाथा	२१६ - २१७
२२	प्रवचन सारोद्धार	२५ गाथा	३६८ - ८२
२३	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२४) भगवान अरिष्टनेमि के शासन काल में आर्याओं की संख्या चालीस हजार थी (२५) भगवान पाश्वनाथ के शासन काल में साध्वियों की उत्कृष्ट सम्पदा अड़तीस हजार थी (२६) भगवान महावीर के शासन काल में श्रमणियों की उत्कृष्ट सम्पदा छत्तीस हजार थी (२७) उपयुर्क्त विवेचन से किस तीर्थंकर के शासनकाल में कितनी श्रमणियाँ हुई थी, उसका स्पष्ट रूप से परिज्ञान हो जाता है।

नारी पर्याय का उत्कृष्ट स्वरूप आर्यिका के रूप में भी है, जिसका अर्थ सज्जनों के द्वारा जो अर्चनीया, पूज्यनीया होती है जो निर्मल चारित्र को धारण करती है वह आर्यिका का है और आर्यिका का अपरनाम साध्वी है। जो अध्यात्म साधना का यथाशक्ति परिपालन करती है, उसे साध्वी कहते हैं। शम, शील, संयम और श्रुत ही साध्वी का यथार्थ स्वरूप है और यह एक ऐसी परम निर्मल तारिका है जो अपनी साधना की प्रभा से भावुक आत्माओं का प्रभास्वर कर देती है। उनके अन्तरंग और बहिरंग जीवन में आमूलचूल परिवर्तन भी करती है।

श्रमणी जहाँ एक ओर स्वकल्याण में सर्वात्मना निरत रहा करती है। जिस साधना मार्ग पर नित्य निरन्तर अग्रसर होती हुई लक्ष्य की ओर प्रगतिशील रहती है और वह दूसरी ओर जैन धर्म की प्रभावना में भी अपना महत्त्वपूर्ण अवदान देती है। जैन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों की प्राणप्रतिष्ठा जनता जनार्दन के लिए करती है। इतना ही नहीं वह उन्हें व्यसनमुक्ति का पाठ भी पढ़ाती है। सदाचार जीवन जीने की सत्प्राण प्रेरणा प्रदान करती है, जिससे उनका जीवन यथार्थ में जीवन बन जाता है और वह जीवन एक ऐसा प्रेरणास्पद होता है कि परिवार, समाज और राष्ट्र भी गौरवान्वित होता है।

श्रमणी स्वयं योग्यता सम्पन्न होती है जिससे उसकी प्रवचनकला भी महत्वपूर्ण होती है। उसका प्रभाव भी विलक्षण है जिससे श्रोतागण भी उस प्रवचन कला के प्रभाव-प्रवाह में डूबता तैरता रहता है। श्रोता अध्यात्म प्रधान प्रवचन सुधा का पान करता हुआ बहिर्जगत् से हटकर अन्तर्जगत् में पहुँच जाता है। यही उसके प्रवचन कला का अचिन्त्य प्रभाव साकार रूप में दिखाई पड़ता है।

श्रमणी अपने जीवन में उत्कृष्ट रूप से तपः साधना भी करती है जिससे जैन धर्म की प्रभावना को और अधिक व्यापकता प्राप्त होती है श्रमणी स्वयं तपः साधना में प्रलम्बकाल तक संलग्न रहने के साथ ही अन्य भव्यात्माओं को भी तपस्या की महत्ती प्रेरणा देती है जिससे भव्य आत्माएँ अपनी जीवन को तपश्चरण के सांचे में ढाल देते है। तप जहाँ एक ओर जैन धर्म की प्रभावना सम्पादन में सक्षम है वहाँ दूसरी ओर तप जन्म जन्मान्तरों के संचित/बन्धित कर्म पुद्गलों को भी क्षीण कर देता है। कर्म जब आत्यन्तिक रूप से क्षय हो जाते हैं तब आत्मा परम शाश्वत पद को प्राप्त कर लेता है।

कतिपय श्रमणियां अहिंसा धर्म की विजय पताका फैलाती हुई हिंसा की परम्परा को सदा के लिए समाप्त कर देती है। समाजगत हिंसा प्रधान रूढ़ियों का उन्मूलन कर देती है और अहिंसात्मक स्वस्थ परम्परा का आविर्भाव करती है। श्रमणियाँ अध्यात्म योग के क्षेत्र में भी दक्षता प्राप्त होती है। अध्यात्मयोग उनका निजी रस होता है और यह रस धारा स्वयं को आप्लावित करती हुई दूसरों को भी लाभान्वित कर देती है। अहिंसा और अध्यात्मयोग ये दोनों अपने आप में महान् तत्व हैं। श्रमणी जगत ने इनके द्वारा भी जैन धर्म की प्रभावना/अभिवृद्धि में मूल्यवान् योगदान दिया है।

२४	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
२५	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
२६	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
२७	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सार पूर्ण शब्दों में इतना ही कहा जा सकता है कि श्रमणियों ने जिन शासन की प्रभावना में जब से योगदान देना प्रारम्भ किया उसका इतिवृत शब्दशः लिखना इस लघुकाय निबन्ध में सम्भव नहीं है तथापि हमारा विनम्र प्रयास भी उस दिशा में डग भर है।

* * * * *

चिंतन - कण

- दूसरों के काम में हाथ बटाने पर सुख की अनुभूति होती है।
- यह शरीर एक दिन अवश्य नष्ट होगा, सिर्फ आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व ही शेष रह जाएँगे।
- अपने को सदा सत्कार्य करने में ही लगाओ।
- सदाचार ही जीवन का सार है।
- सहनशक्ति ही अंत में सुखकारी होती है।
- जीवन का अंतिम सुख त्याग है।
- त्याग जैन शासन का संदेश है।
- त्याग धर्म व शांति है, भोग अधर्म व अशांति है।
- जीवन एक वाटिका है, इस वाटिका में सद्गुणों के पुष्प लदे हुए हैं।
- यह संसार एक बाजार है, जीवन में (बाजार के सामान के प्रतीक) गुणों व अवगुणों को उतारने के लिए मानव स्वतंत्र है।
- जीवन अमूल्य मोती है। मोती से जन सामान्य मुग्ध हो जाता है। अतः सद्गुण रूपी मोती जीवन में उतरने से सारा संसार प्रफुल्लित हो उठता है।
- उपवन में भीनी-भीनी महक आती है पुष्पों की, वैसे ही सच्चाई के मानव में विकास से सारा संसार भीना-भीना महक सकता है।

● स्व. श्री चम्पाकुंवर जी म.सा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org